उपज के घटते दाम

अनेक चर्चाओं और तात्कालिक उपायों के बावजूद खेती-किसानी की मुश्किलें थमती नजर नहीं आ रही हैं. वाणिज्य एवं उद्योग मंत्रालय द्वारा जारी दिसंबर के थोक मूल्य सूचकांक इंगित करते हैं कि प्राथमिक खाद्य उत्पादों के दाम जुलाई से लगातार गिर रहे हैं. ये आंकड़े इसलिए महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि किसान अपनी उपज थोक बाजार में ही बेचते हैं. यह गिरावट सूचकांक के अन्य हिस्सों में नहीं है. अक्तूबर और दिसंबर के बीच उपभोक्ता मूल्य सूचकांक में भी खाद्य पदार्थों की कीमतें कम हुई हैं. इसका सीधा मतलब यह है कि किसान अपनी पैदावार कम दाम पर बेच रहे हैं, जबकि उन्हें अपने उपभोग की चीजें महंगी दरों पर खरीदनी पड़ रही हैं. उपज की गिरती कीमत तथा ग्रामीण क्षेत्रों में आय में कमी का लोगों की क्रय शक्ति पर नकारात्मक असर पड़ा है. मांग और उपभोग घटने से अर्थव्यवस्था भी प्रभावित होती है, क्योंकि औद्योगिक और उपभोक्ता वस्तुओं का बड़ा खरीदार वर्ग ग्रामीण भारत में बसर करता है. ऐसे में न्यूनतम समर्थन मूल्य में बढ़ोतरी और कर्ज माफी जैसे उपायों से भले ही फौरी राहत मिल जाये, परंतु इनसे किसानों का कल्याण संभव नहीं है. फ्रांस के प्रधानमंत्री रहे पियरे मेंडेस-फ्रांस ने कहा था कि शासन करने का अर्थ होता है विकल्प का चयन करना. दुर्भाग्य की बात है कि कई वर्षों के कृषि-संकट के बावजूद केंद्र और राज्य सरकारें इस संबंध में ठोस नीतिगत पहल नहीं कर पायी हैं. राजनीतिक आरोप-प्रत्यारोप और चुनावी समीकरणों में उलझी पार्टियों और सरकारों ने सकारात्मक आर्थिक सुधारों से कृषि क्षेत्र को अलग ही रखा है. न्यूनतम समर्थन मूल्य बढ़ाने की घोषणा या कर्ज माफी के फैसलों के नतीजों की कभी ठीक से समीक्षा नहीं की जाती है. किसानों तक इनके फायदे तुरंत पहुंचाने तथा बकाया भुगतान की समुचित सुविधा की खामियों को दूर करने के प्रयास भी अनमने ढंग से होते रहे हैं. एक तो सरकारी खरीद कम होती है और दूसरे, खरीद का भुगतान करने में देरी की जाती है. इसी तरह सहकारी संस्थाओं और मिलों से भी पैसा निकालने में किसान परेशान रहते हैं. यह भी याद रखा जाना चाहिए कि कृषि उपज के दाम में मौजूदा कमी 2000-01 के करीब दो दशक बाद ऐसी गंभीर स्थिति में पहुंची है तथा थोक सूचकांक में अनाज की कीमतें किसी वित्त वर्ष में लगातार दो तिमाही गिरने की घटना पिछली बार 1990 में हुई थी. उपज की सही कीमत न मिलने की निराशा कभी किसानों को आत्महत्या करने या कभी फसलों को सड़क पर बिखेर देने के रूप में सामने आती है. देश के अनेक हिस्सों में बीते कुछ समय से किसान लगातार प्रदर्शन कर सरकारों से समस्याओं की सुनवाई की गुहार लगा रहे हैं. किसानों ने अपनी मेहनत से पैदावार बढ़ाकर खाद्यान्न में देश को आत्मनिर्भर बनाया है. अब इनकी मुश्किलें बर्दाश्त से बाहर जा चुकी हैं और इनसे निजात पाने के लिए गंभीर पहलकदमी की दरकार है.

किसानों ने मेहनत से पैदावार बढ़ाकर खाद्यान्न में देश को आत्मनिर्भर बनाया है. अब इनकी मुश्किलें बर्दाश्त से बाहर जा चुकी हैं और इनसे निजात पाने के लिए गंभीर पहलकदमी की दरकार है.

देश की राजनीति में हिंदी पट्टी

मनींद्र नाथ ठाकुर
एसोसिएट प्रोफेसर, जेएनयू
manindrat@gmail.com

एक समय था, जब हिंदी पट्टी भारतीय राजनीति की दिशा निर्धारित करती थी, लेकिन आज वह पूरी तरह से हाशिये पर है. भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के बाद और स्वतंत्रता के शुरुआती दौर में आर्थिक तौर पर मजबूत रहने के बावजूद ऐसा क्या हो गया कि यह पूरा इलाका बीमारू राज्य बन गया? एक बात तो समझ में आती है कि बहुत समय तक इन रज्यों ने राष्ट्र निर्माण का बोझा उठाया. बिहार और झारखंड जैसे राज्यों का आर्थिक दोहन लगातार होता रहा और ये राज्य इसे राष्ट्र के विकास में अपनी हिस्सेदारी मानते रहे. इन राज्यों के कोयले से राजधानी को बिजली मिलती रही, लेकिन इन राज्यों में अंधेरा छाया रहा. इन राज्यों के उच्च शिक्षा को आहिस्ते-आहिस्ते खत्म होने दिया गया. कभी अपनी स्तरीयता के लिए प्रसिद्ध इलाहाबाद, बनारस, अलीगढ़, पटना, रांची, भागलपुर, सागर और जयपुर के विश्वविद्यालय द्वितीय श्रेणी के हो गये. विकास के लगभग हर क्षेत्र की यही कहानी है. यहां उद्योग धंधों की कमी, बेरोजगारी और किसानों की बदहाली इतनी बढ़ गयी कि एक तरह का सामाजिक संकट हो गया. फिर सिलसिला शुरू हुआ अपराध का. उदाहरण के लिए, देश की सबसे उपजाऊ भूमि के लिए जाना जानेवाले बिहार के सीमांचल के कई जिले देश के सबसे गरीब जिले हो गये. बड़े पैमाने पर लोग राज्य छोड़कर पलायन करते हैं और अब तो जहां-तहां पिटते नजर भी आते हैं.

इन सबके लिए कौन जिम्मेदार है? यह कहना अनुचित नहीं होगा कि इसके लिए जिम्मेदार इन राज्यों की राजनीति और देश की राजनीति में इसके हिस्सेदारी की कमी है. जहां एक तरफ दक्षिण के राज्य हर समय इस बात को लेकर सचेत थे कि उनका आर्थिक विकास सही ढंग से हो सके, और केंद्र सरकार उसका सही ध्यान रखे. दूसरी तरफ हिंदी पट्टी के राज्य इन सबसे बेखबर रहे. यूरोपियन यूनियन के एक मित्र ने एक बार बताया कि दक्षिणी राज्यों के मुख्यमंत्री जब दिल्ली आते हैं, तो अपने साथ पदाधिकारियों की एक टीम लेकर सबसे पहले उनके पास आते हैं और उनसे अपने राज्यों की स्वयंसेवी संस्थाओं को सहायता के लिए व्यवस्था करते हैं. जबकि हिंदी पट्टी के मुख्यमंत्री इस तरह के विकासोन्मुखी संस्थाओं से कोई संबंध नहीं रखते हैं. इन राजनीतिक दलों के पास जाति और धर्म को लेकर सोशल इंजीनियरिंग का खाका तो रहता है, लेकिन उनके पास इन राज्यों के विकास का कोई ब्लूप्रिंट नहीं है. न ही यहां के नौकरशाही के पास कोई ब्लूप्रिंट है. आखिर उनकी स्वायत्तता ही कितनी है. उनका भी स्वभाव कुछ वैसा ही हो जाता है, जिसमें खाओ-पियो और मौज करो की प्रवृत्ति प्रधान हो जाती है.

ऐसे कई उदाहरण हैं, जिस आधार पर इन बातों को सही ठहराया जा सकता है. अभी हाल में शोध कार्य के दौरान पता चला कि एक बांध को लेकर लोग आंदोलन कर रहे थे, तो उन्हें किसी तरह रोका गया, लेकिन बिना सही वजह बताये ऐसे ही एक खतरनाक बांध की योजना बन गयी. यह राजनेताओं, ठेकेदारों और नौकरशाहों की संयुक्त साजिश प्रतीत होती लगती है.

राजनीति को बदलने के लिए सामाजिक बदलाव जरूरी है, हमारी सामंती मानसिकता में परिवर्तन जरूरी है, ताकि जाति-धर्म के आधार पर सोशल इंजीनियरिंग करने के बदले पार्टियां विकास के मुद्दों को अपना आधार बना सकें.

ओएनजीसी ने यह माना है बिहार के पूर्णिया क्षेत्रों के आस-पास प्रचुर मात्रा में तेल है, लेकिन उसे निकालने की कोई खास कोशिश नहीं की गयी है. जबकि, देश के अन्य इलाकों में बहुत खर्च करने के बाद भी तेल नहीं मिला और फिर भी खर्च की कोशिश की जा रही है. ऐसे अनेक उदाहरण मिल सकते हैं, जिससे यह प्रमाणित किया जा सकता है कि स्वतंत्रता के बाद विकास गति इन इलाकों के राजनेताओं ने समझा ही नहीं या फिर उसके बारे में वे सचेत ही नहीं रहे. उलटा यहां सामंती प्रवृत्ति का पुनः प्रत्यारोपण होने लगा. और ऐसा लगने लगा कि हम वापस मध्ययुगीन अंधकार में लौटने लगे.

अब सवाल है कि आगे की योजना क्या होनी चाहिए, जिससे हिंदी पट्टी को एक बार फिर देश को दिशा देने का मौका मिल सके. निश्चित रूप से इसके लिए यहां एक नयी राजनीतिक चेतना की जरूरत है और यह तभी संभव है, जब स्वतंत्रता संग्राम के समय के अधूरे काम पूरे किये जा सकें. ऐसा मानने में किसी को उज्र नहीं होना चाहिए कि स्वतंत्रता आंदोलन के समय बंगाल जैसे राज्यों में जिस तरह का सामाजिक आंदोलन हुआ, इसका प्रभाव हिंदी पट्टी में कम पड़ा. जो आंदोलन शुरू भी हुए, स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद थम गये. इसलिए किसी राजनीतिक परिवर्तन की पहली शर्त है कि इन इलाकों में सामाजिक परिवर्तन की एक जोरदार लहर चले, ताकि इसके जातिवादी स्वरूप में परिवर्तन हो, महिला विरोधी स्वभाव बदले और विकास के अभाव में जो मानसिकता यहां पनप रही है, उसका खात्मा हो.

कोई सरकार या राजनीतिक पार्टी इसके लिए शायद ही तैयार हो. सच तो यह है कि पार्टियां और उनकी सरकारें इस तरह के किसी आंदोलन को दबाने का ही काम करेंगी. इसलिए इन आंदोलनों के लिए समाज को स्वयं ही आगे आना पड़ेगा. अर्थात् राजनीति को बदलने के लिए सामाजिक बदलाव जरूरी है, हमारी सामंती मानसिकता में परिवर्तन जरूरी है, ताकि जातियों और धर्मों के आधार पर सोशल इंजीनियरिंग करने के बदले पार्टियां विकास के मुद्दों को अपना आधार बना सकें. सामाजिक परिवर्तन के लिए जरूरी यह है कि तमाम सामाजिक संस्थाओं को तार्किक आधार पर कसा जाये, उसमें बदलाव के लिए पहल की जाये. लोगों में अपनी आमदनी को पुनः उत्पादन में लगाने के लिए प्रेरित किया जाये. इन सबके लिए इन राज्यों में शिक्षा जगत को ठीक करना होगा.

आज बिहार के बहुत से लोग जो बाहर रहते हैं और राज्य में बदलाव चाहते हैं, उन्हें एकजुट होकर शिक्षा में लागत लगानी चाहिए. शिक्षा के सरकारी प्रयासों से अलग अन्य प्रयोग किये जाने चाहिए. और इस प्रयोग में सामाजिक परिवर्तन और राजनीतिक चेतना को जगह देने की जरूरत है. एक जमाने में इन राज्यों के गांव-गांव में जन सहयोग से पुस्तकालय चला करते थे, जो अब लगभग खत्म हो गये हैं. एक आंदोलन ऐसा भी होना चाहिए, जो इन पुस्तकालयों को पुनः स्थापित कर नये स्वरूप में उसकी कल्पना करे. इन पुस्तकालयों के माध्यम से इन राज्यों की जनता को दुनिया से जोड़ने की कोशिश की जानी चाहिए और जो लोग इन समाजों से बाहर जाकर दुनिया के बदलाव को देख रहे हैं, उनसे भी जुड़ना चाहिए. और इन सबके लिए हमें राज्य पर निर्भर नहीं होना चाहिए, बल्कि जनसहयोग ही इसका एक मात्र रास्ता है.

बोधि वृक्ष

ब्रह्मभाव

ब्रह्मभाव और मानव जीवन, मनुष्य व्याप्ति चाहता है और इस व्याप्ति में वह अपनी निरंकुश प्रतिष्ठा चाहता है. वह महत् आश्रय चाहता है, किंतु यह चाह भी उसके लिए यथेष्ट नहीं है, वह इस आश्रय को पकड़ना भी चाहता है. मनुष्य का जो यह बृहत् को पाने की आकांक्षा है, बड़े होने की इच्छा है, इससे ही नाना घात-प्रतिघात के मध्य होकर नाना संस्कार-आडंबर, इज्म-मतवाद, साध्य-साधना की विचित्रता की भीड़ हटा ब्रह्म-विज्ञान का आविष्कार करना, उसके अंदर में महत् को पाने की आकांक्षा को पोषण करने के पुरस्कार को छोड़ और कुछ नहीं है. मनुष्य में यदि व्याप्ति की इच्छा नहीं रहती, तो ब्रह्म-समुद्र में रहकर भी वह ब्रह्म को पहचानने की चेष्टा नहीं करता, प्रायः चिर दिन उनसे वह दूर रह जाता. मनुष्य व्याप्ति चाहता है- बृहत् को पाना चाहता है. पाना चाहता है आत्म सुख के लिए, आत्मरक्षा के लिए, आनंद प्राप्ति के लिए, इसलिए देखते हैं कि एक सौ बीघा जमीन का मालिक डेढ़ सौ बीघा जमीन का मालिक बनना चाहता है, लखपति करोड़पति होना चाहता है. व्याप्ति की प्रचेष्टा अथवा सुख की एषणा जब तक सीमा को लेकर है, तब तक व्याप्ति साधना दूसरों के साथ स्वार्थ-संघर्ष अवश्य ही बांधेगा. और इसीलिए इस प्रकार की व्याप्ति साधना अधिक दिन अच्छी तरह नहीं चल सकती. दूसरे को ध्वंस कर अपने को पुष्ट करने की चेष्टा, अधिक दिन तक चलाये जाना संभव नहीं है. व्याप्ति की इच्छा मनुष्य का सहजात धर्म है, इसलिए इस इच्छा को दबाये रखा नहीं जा सकता है- उसे स्फुरण का पथ देना ही होगा. सीमित वस्तु में इस इच्छा के प्रयोग का फलक जब समाज के लिए क्षतिकर है, तब इस इच्छा को असीमित वस्तु की दिशा मे छोड़ देना होगा. जो वस्तु असीमित है, उस वस्तु को जो जितना ले सकें, किसी के साथ किसी प्रकार का संघर्ष नहीं होगा. इसलिए ब्रह्म साधना, जड़ साधना से संपूर्ण रुपेण पृथक चीज है. कारण इसमें लक्ष्य ही बड़ा है- द्वंद्व बड़ी बात नहीं है, ध्येय बड़ा है- पथ बड़ा नहीं है.

श्रीश्री आनंदमूर्ति

आसान नहीं आरक्षण की राह

प्रो फैजान मुस्तफा
वाइस चांसलर, नलसर यूनिवर्सिटी ऑफ लॉ
delhi@prabhatkhabar.in

पिछले दिनों आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों को 10 प्रतिशत आरक्षण प्रदान करने हेतु संसद के दोनों सदनों में पारित 124वें संविधान संशोधन विधेयक के द्वारा संविधान के अनुच्छेद 16 में एक नया उपबंध जोड़ा गया है, जो राज्यों को ऐसे प्रावधान करने में समर्थ बनाता है. इस वजह से केंद्र सरकार को यह भरोसा है कि सुप्रीम कोर्ट द्वारा इस आरक्षण को असंवैधानिक करार देने की संभावना नहीं होगी और इसे समानता तथा भेदभाव-विहीनता के सिद्धांत के अनुरूप पाया जायेगा. इसके बावजूद, यूथ फॉर इक्वलिटी नामक एक एनजीओ ने तो इस कदम को संविधान के बुनियादी ढांचे के उल्लंघन के आधार पर चुनौती दी ही है, दूसरी ओर वरिष्ठ अधिवक्ता इंदिरा साहनी (जिनकी दलीलों के नतीजे में सुप्रीम कोर्ट ने मंडल कमीशन के संदर्भ में आरक्षण की अधिकतम सीमा 50 प्रतिशत तय की थी) भी इसे चुनौती देने पर विचार कर रहे हैं.

प्रश्न यह उठता है कि आरक्षण के संदर्भ में संविधान के बुनियादी ढांचे की प्रासंगिकता क्या है? महात्मा गांधी एवं डॉ बीआर आंबेडकर के बीच संपन्न पूना पैक्ट (1932) से लेकर संविधान सभा की बहसों तक आरक्षण का प्रसंग विभिन्न वर्गों के सामाजिक पिछड़ेपन के संदर्भ में ही उठता रहा. 124वें संविधान संशोधन ने आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों को आरक्षण का लाभ देकर इस लीक से हटने का कार्य किया है. वर्ष 1951 में संविधान में किये गये पहले संशोधन के द्वारा उसमें जोड़ा गया अनुच्छेद 15(4) राज्यों को सामाजिक तथा शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण देने की शक्ति देता है, जबकि अनुच्छेद 16(4) किसी भी ऐसे पिछड़े वर्ग के लिए आरक्षण की अनुमति देता है, जिसे सरकारी नौकरियों में उचित प्रतिनिधित्व नहीं मिल सका हो.

इस तरह, आरक्षण एक अधिकार नहीं है, पर यदि यह दिया गया है, तो इसे समानता के सिद्धांत का उल्लंघन नहीं माना जायेगा. अनुच्छेद 17 अस्पृश्यता का उन्मूलन करता है. इसलिए, यदि किसी वर्ग के साथ सामाजिक बहिष्करण की बुराई जुड़ी है, तो उसके लिए आरक्षण उचित हो सकता है. अनुच्छेद 46, जो एक नीति निर्देशक सिद्धांत है और जिसके आधार पर किसी अदालत में सुनवाई नहीं हो सकती, यह कहता है कि राज्य 'कमजोर वर्गों', खासकर अनुसूचित जातियों (एससी) तथा अनुसूचित जनजातियों (एसटी) के शैक्षणिक एवं आर्थिक हितों को बढ़ावा देते हुए 'सामाजिक अन्यायों' तथा 'सभी रूपों के शोषण' से उनका संरक्षण करेगा. 124वें संविधान संशोधन विधेयक ने अपने बयान एवं उद्देश्यों के अंतर्गत अनुच्छेद 46 का उल्लेख करते हुए इस तथ्य को नजरअंदाज कर दिया है कि अगड़ी जातियां न तो कोई सामाजिक अन्याय झेल रही हैं, न ही वे किसी शोषण की शिकार हैं.

संविधान ने एससी, एसटी तथा सामाजिक-शैक्षणिक पिछड़े वर्गों के लिए किये गये संवैधानिक सुरक्षा उपायों के क्रियान्वयन से संबद्ध मामलों की देखरेख के लिए विभिन्न आयोगों का प्रावधान किया है. पर उसने आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों के लिए ऐसे किसी आयोग का प्रावधान नहीं किया. अनुच्छेद 335 कहता है कि सेवाओं एवं पदों पर नियुक्तियों के संदर्भ में एससी एवं एसटी के दावे पर विचार करते वक्त प्रशासनिक कुशलता कायम रखने का ख्याल भी रखा जायेगा.

आर्थिक आरक्षण की संवैधानिकता की परख करते हुए सुप्रीम कोर्ट को उन सिद्धांतों की परीक्षा करनी होगी, जिनके आधार पर यह कदम उठाया गया है. एम नागराज (2006) के अनुसार, कोर्ट को दो जांच करनी होगी, पहली- संशोधन करने की शक्तियों की सीमा पर व्यापकता जांच है. इसके अंतर्गत चार मुद्दों की परीक्षा होगी- क) सभी आरक्षण को जोड़कर भी 50 प्रतिशत की संख्यात्मक सीमा, ख) क्रीमी लेयर का बहिष्करण अथवा गुणात्मक बहिष्करण, ग) आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के पिछड़ेपन जैसी बाध्यकारी वजह, तथा घ) यह कि इस नये आरक्षण से समग्र प्रशासनिक कुशलता पर कोई आंच नहीं आयेगी. दूसरी है पहचान की जांच, जिसके अंतर्गत सुप्रीम कोर्ट यह विचार करेगा कि संशोधन के पश्चात संविधान की पहचान में कोई फेरबदल तो नहीं हुआ, क्योंकि संशोधन इसमें कोई परिवर्तन नहीं कर सकता.

भारत में समानता को लोकतंत्र एवं विधि के शासन का सार माना गया है. इसलिए, 124वें संविधान संशोधन के संदर्भ में सुप्रीम कोर्ट को यह विचार भी करना होगा कि क्या राज्य ने संशोधन करते हुए इस सिद्धांत के साथ औचित्य स्थापित किया है? राज्य को कोर्ट के समक्ष संख्यात्मक आंकड़े पेश करते हुए उसे संतुष्ट करना होगा कि आर्थिक रूप से इस पिछड़े वर्ग के प्रतिनिधित्व में अपर्याप्तता मौजूद थी. फिर, सरकार द्वारा 50 प्रतिशत की सीमा के उल्लंघन हेतु 'बाध्यकारी वजहों' का औचित्य भी सिद्ध करना होगा. यहां तक कि प्रोन्नति में एससी/एसटी के आरक्षण के लिए भी कोर्ट ने पिछड़ेपन के केवल संख्यात्मक आंकड़े में ढील दी, पर प्रतिनिधित्व की अपर्याप्तता और कुशलता के प्रभावित न होने की शर्त पर बल दिया. किसी भी जाति को पिछड़े वर्गों में शामिल करने के पहले उसकी सामाजिक, शैक्षणिक तथा आर्थिक स्थितियों का पूरा आकलन किया जाना होता है. जिन जातियों को मंडल आयोग ने सप्रमाण 'अगड़ी जातियां' माना, अब उन्हें बगैर उतने ही प्रामाणिक आंकड़े के 'पिछड़े वर्गों' की संज्ञा नहीं दी जा सकती, क्योंकि तब कोर्ट इसे मनमानी कार्रवाई मान सकता है.

राज्य को कोर्ट के समक्ष संख्यात्मक आंकड़े पेश करते हुए उसे संतुष्ट करना होगा कि आर्थिक रूप से इस पिछड़े वर्ग के प्रतिनिधित्व में अपर्याप्तता मौजूद थी. फिर, सरकार द्वारा 50 प्रतिशत की सीमा के उल्लंघन हेतु 'बाध्यकारी वजहों' का औचित्य भी सिद्ध करना होगा.

आपके पत्र

गठबंधन में गांठ!

बड़े राज्य यूपी में सपा और बसपा के ताजा गठबंधन पर लगी गांठ के बाद रालोद और कांग्रेस में कुछ हताशा और निराशा स्वाभाविक है. इससे भाजपा को कुछ लाभ हो सकता है. यही हाल देश के अन्य प्रांतों में भी लगता है, जिससे त्रिशंकु संसद की भी संभावना है. इससे उत्पन्न खंडित जनादेश की स्थिति में तो चुनाव बाद ही कोई नया गठबंधन बन सकता है, जिसमें बड़ी पार्टी कांग्रेस से ही पीएम होना भी स्वाभाविक है. इसमें राहुल गांधी की जगह अन्य कोई भी हो सकता है. इस संभावित साझा सरकार में कांग्रेस यदि सरकार में शामिल होती है तभी यह सरकार चल पायेगी वरना तो फिर वही पुराना इतिहास ही दोहरायेगी.

वेद मामूरपुर, नरेला

अभिव्यक्ति की आजादी का खतरनाक परिणाम।

जेएनयू में फरवरी 2016 में हुए कार्यक्रम में देश विरोधी नारेबाजी के लिए चार्जशीट दाखिल होते ही उस पर राजनीति शुरू हो गयी है. कन्हैया कुमार और उमर खालिद को चार्जशीट मे देशद्रोही का आरोपित बनाया गया है. इनके अलावा इसमें अनिर्बान व सात कश्मीरी छात्र सहित कुल 36 नाम हैं. देश में बीते तीन-चार साल में एक चलन से शुरू हो गया है जिसमें अभिव्यक्ति की आजादी के नाम पर देश की संप्रभुता पर ही सवाल उठाये जाने लगे हैं. यह एक अत्यंत खतरनाक परंपरा है. इस बात में कोई दो राय नहीं है कि हमारा संविधान हम सभी को अपनी बात कहने का अधिकार देता है लेकिन कुछ भी कहने का अधिकार हमें किसी भी सूरत में कहीं से प्राप्त नहीं हो सकता है.

अमन सिंह, बरेली,उत्तर प्रदेश

परीक्षा पास करके भी बेरोजगार बैठे हैं लोग

छत्तीसगढ़ में शिक्षक पात्रता परीक्षा पास करके भी लोग बेरोजगार बैठे हैं. वे शासन की ओर ताक लगाये बैठे हैं कि कब हमारी भर्ती हो. सरकारी प्राथमिक और पूर्व माध्यमिक स्कूलों में शिक्षाकर्मी बनने के लिए 2011 में 70 हजार उम्मीदवार शिक्षक पात्रता परीक्षा (टीईटी) पास कर चुके हैं, पर अब तक उनकी भर्ती की प्रक्रिया शुरू हुई ही नहीं है, जबकि सात साल पूरे होते ही उम्मीदवारों के सर्टिफिकेट अवैध हो जाते हैं. लाखों लोग टेस्ट क्वालिफाइ करने के बाद भी बेरोजगार घूम रहे हैं तो कई उम्मीदवार भगवान भरोसे में बैठ गये हैं कि अब उन्हें आसानी से शिक्षाकर्मी की नियुक्ति मिल जायेगी. शिक्षा विभाग ने टीईटी आयोजित करने के बाद एक बार भी शिक्षाकर्मी भर्ती की प्रक्रिया नहीं की. इस वजह से क्वालिफाइ करने वालों के लिए अवसर ही पैदा नहीं हुए. शिक्षा विभाग ने 2011 में पहली बार टीईटी का आयोजन करवाया था. उस समय शिक्षाकर्मी बनने की पात्रता के लिए इतनी जबर्दस्त होड़ मची थी कि सात लाख परीक्षार्थियों ने परीक्षा दिया. उनमें से 70 हजार परीक्षार्थियों ने क्वालिफाइ किया. लेकिन एक बार भी शिक्षाकर्मियों की भर्ती की प्रक्रिया शुरू नहीं की गयी. इससे उम्मीदवारों को नौकरी के लिए आवेदन करने का मौका तक नहीं मिला.

दीपक पटेल, लाहोद, बलौदा बाजार

कुछ अलग

सरकार ऐसे बने तो...

संतोष उत्सुक
व्यंग्यकार
santoshutsuk@gmail.com

जनाब को चुनाव में मजा नहीं आया, उन्होंने अपने गिने-चुने कार्यकर्ताओं की बैठक में दिये भाषण में हाथ लहराकर कहा- यह बहुत नाइंसाफी है कि विधानसभा की कुल सीटों की आधी से एक सीट भी ज्यादा आ जाये, तो सरकार निर्माण के लिए ईंट, सीमेंट, रेत और लोहा इकट्ठा हो जाता है. बाकी बंदों ने चाहे जितनी आर्थिक, शारीरिक या दिमागी जान मारी हो, बेचारों को मुंह देखते रहना पड़ता है. उनकी जिंदगी का स्वाद कसैला हो जाता है. निर्दलीय या स्वतंत्र लड़कर, जीतकर आनेवाले निढाल हो जाते हैं. देश में टू पार्टी सिस्टम लागू होना चाहिए, यह प्रणाली अमेरिका से मंगा लो फिर देखो मजा. जब एक पार्टी को अस्सी प्रतिशत सीटें मिलें, तब मजा आये. बहुमत हो तो ऐसा. यहां तो अच्छे कॉलेज में नब्बे प्रतिशत पर सीट नहीं मिलती. इनकी डिग्री से नौकरी भी पक्की नहीं होती. इनमें से अगर इक्यावन प्रतिशत भी हमारे हिस्से में आये, तो पूरी सरकार अपनी. मंत्री अपने, ठेकेदार अपने और अफसर सब भी अपने.

इन सरकारों में ऐसे लोग खूब शामिल होते हैं, जिन पर अपहरण व हत्या जैसे संगीन मामले लटक रहे होते हैं. सख्त कानून के पेंच खुले रखे जाते हैं, तभी तो गिरफ्त इनसे दूर भागती है और ये कुछ लोग करोड़ों लोगों को अपनी पसंद के निर्णयों की जेल में रखते हैं. यह आम तौर पर जाति, संप्रदाय, धर्म, बल, धन व मीठी बातों के दम पर जीतते हैं. उधर लाखों का कर्ज लेकर डिग्री हासिल करनेवाले अधिकतर को नौकरी मुश्किल से मिलती है. इनकी तनख्वाह भी इतनी और ऊपर से पेंशन पर आयकर भी नहीं लगता. दूसरे लाखों पेंशनर्स की कमाई एक नंबर की होती है, तो टैक्स वसूला जाता है. ताकत हमेशा निरंकुशता की ओर अग्रसर होती है. हर एक के लिए मतदान अनिवार्य हो तब सरकार बने, जाति खत्म कर हम सिर्फ भारतीय रह जायें, एक क्रमांक के आधार पर पहचाने जायें. आरक्षण न हो तो एकता आ जाये.

उनका भाषण खत्म हुए ज्यादा देर नहीं हुई थी, खबर मिली उनके गिने-चुने समर्थकों ने ही उन्हें सरकारी अस्पताल के बिस्तर पर पहुंचा दिया. उनकी टूटी हुई टांग व फटे हुए सिर पर तीन दर्जन पट्टियां बंधी हुई थीं. डॉक्टर उनका इलाज करते हुए घबराये लग रहे थे. उनकी बीमार पत्नी पास बैठी हुई उन्हें निरंतर बुरा-भला कह रही थी. बेहद सकारात्मक बात यह रही कि उन्होंने अभी सिर्फ अभ्यास करने के लिए कुछ लोगों के सामने पहली बार कुछ कहा था. उनका चुनाव में खड़ा होना या सरकार में शामिल होना चार सौ बीस मील दूर था.

इतना लंबा सपना उनके शरीर से सहा नहीं गया, हड़बड़ाकर उठ गये और सोचने लगे कि दिमाग क्या-क्या गलत बातें सोच रहा था. सरकार कहीं ऐसे बनती है? अभी उनकी पत्नी आराम से खरीटे ले रही थी. उन्हें याद आया आज से सुबह की चाय बनाने की ड्यूटी उनकी है. उनकी घरेलू सरकार सुबह-सुबह गिरने से बच जाये, इसलिए उन्होंने उठने में देर नहीं की और चाय बनाने की तैयारी करने लगे.

देश दुनिया से

फिलिस्तीनियों की सहायता राशि में कटौती

अनुदान की कमी के कारण विश्व खाद्य कार्यक्रम (डब्ल्यूएफपी) ने वेस्ट बैंक और गाजा पट्टी के कुछ फिलिस्तीन लाभार्थियों की सहायता पर कुछ समय के लिए रोक लगा दी है. विश्व खाद्य कार्यक्रम के फिलिस्तीन क्षेत्र के निदेशक स्टीफन कीयर्ने का कहना है कि वेस्ट बैंक के कुछ सत्ताइस हजार फिलिस्तीनी को संयुक्त राष्ट्र कार्यक्रम के तहत दी जानेवाली सहायता एक जनवरी से बंद हो गयी है. कीयर्ने ने कहा कि इस सहायता राशि में कटौती का फैसला बीते लगभग चार वर्षों से अनुदान में क्रमिक कमी आने के बाद लिया गया है. पिछले साल डब्ल्यूएफपी ने गाजा में दो लाख पचास हजार और वेस्ट बैंक में एक लाख दस हजार लोगों की सहायता की है. विदित हो कि वेस्ट बैंक में बेरोजगारी की दर 18 प्रतिशत है और कुछ फिलिस्तीनी उच्च वेतन पाने की चाह में इस्राइल में काम करना चाहते हैं. लेकिन, ऐसा करने के लिए परमिट की जरूरत होती है और यहां इस्राइल भेदभाव करता है. कीयर्ने की मानें, तो डब्ल्यूएफपी ने बीते वर्ष 19 दिसंबर को अनुदान के लिए आग्रह करना शुरू किया था और यूरोपीय संघ और स्विट्जरलैंड से अतिरिक्त अनुदान भी प्राप्त किया था, लेकिन अभी भी यह राशि पर्याप्त नहीं है.

ALJAZEERA

कार्टून कोना

साभार : बीबीसी

पोस्ट करें : प्रभात खबर, 15 पी, इंडस्ट्रियल एरिया, कोकर, रांची 834001, **फैक्स करें** : 0651-2544006,
मेल करें : eletter@prabhatkhabar.in पर ई-मेल संक्षिप्त व हिंदी में हो. लिपि रोमन भी हो सकती है